काशी का चित्त–चारित्र्य दर्शन

आचार्य शरदकुमार साधक

काशी भारत की प्राचीनतम नगरी है। उत्तर पाषाणकालीन लोगों ने इस कुश–संकुल भू–भाग को आबाद किया और इसे *'देवो देवी नदी गंगामिष्टमन्नं शुभा गतिः'* का अधिष्ठान बनाया। काशी को ही वाराणसी और बनारस कहते हैं। यह नीची होकर भी प्रतिष्ठा में स्वर्ग से ऊंची है। जागतिक सीमा में बद्ध होते हुए भी यह मुक्तिदायिनी है [१]। आम आदमी जब काम और अर्थ प्राप्ति को ही उद्देश्य मानता था एवं आत्म वेत्ता उससे भी अधिक सुखोपभोग की कामना से तप करते थे, तब काशी ने सुख–दुःख से मुक्ति का दर्शन खोजा, इसलिए दुःख में अनुद्विग्न और सुख में निस्पृह रहने वालों को काशी रास आयी। विश्व ही नहीं, विश्वेश्वर की इस नगरी से सच्चिदानन्द की गंगा बहती है : *येषां क्वापि गतिः नास्ति तेषां वाराणसी गतिः।* [२]

'कलौ वाराणसी पुरी' [३] का महत्त्व भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। जैन ग्रंथों में जिन दस प्रमुख नगरों की चर्चा है, उनमें वाराणसी प्रथम स्थान पर है। १. वाराणसी, २. चम्पा, ३. मथुरा, ४. श्रावस्ती, ५. साकेत, ६. कांपिल्य, ७. कौशाम्बी, ८. मिथिला, ९. राजगृह, १० हस्तिनापुर। सनातन ग्रन्थों ने इसे सप्त नगरियों में मध्य का स्थान दिया है। १. अयोध्या, २. मथुरा, ३. माया, ४. काशी, ५. कांची, ६. अवन्तिका, ७. द्वारका। बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त छः नामों में वाराणसी अन्तिम स्थान पर है: १. चम्पा, २. राजगृह, ३. श्रावस्ती, ४. साकेत, ५. कौशाम्बी, ६. वाराणसी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि काशी के चित्त व चरित्र का बहुमान किसने किया, जिससे काशी वासी वस्तुनिष्ठ चिन्तन एवं परिस्थिति सापेक्ष कार्य करने को प्रेरित हुए।

मन्दराचल से बाबा विश्वनाथ काशी पधारे तो काशीवासियों ने कपिलधारा पर उनका गोदुग्ध से अभिषेक किया, यानी उनके आगमन से पूर्व काशीवासी कृषि, पशुपालन, अतिथि सत्कार करना सीख गये थे। सिखावन अयोध्या से आरम्भ हुई। प्रागैतिहासिक काल में वहां ऋषभदेव ने जनता को "असि (शस्त्र कला), मसि (शास्त्र कला), कृषि (उत्पादन कला), शिल्प, वाणिज्य, विद्यानामक षट्कर्मों द्वारा जीविकोपार्जन की शिक्षा देकर कर्मयुग एवं मानवीय सभ्यता का श्रीगणेश किया था।"[४] ऋषभ द्वारा अयोध्या की राजगद्दी भरत को दी गयी। राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में "ऋषभ के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष है।"[५] "भारतीय अनुश्रुति के अनुसार आज से लगभग छः हजार वर्ष पहले उत्तर भारत के बीच (मध्य देश) में मनु और उनके वंशजों का उदय हुआ। मनु इस देश के पहले राजा थे। मनु के बड़े पुत्र इक्ष्वाकु अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठे"[६] जैन वाङ्मय में ऋषभ देव के लिए जिन नामों का प्रयोग हुआ, उनमें एक नाम इक्ष्वाकु भी है। जो भी हो, ऋषभ की शिक्षाओं से लाभान्वित होने वाले अजितनाथ (अयोध्या) संभवनाथ (श्रावस्ती), अभिनन्दन,सुमति (अयोध्या), पद्मप्रभु (कौशाम्बी) और सुपार्श्व, चन्द्रप्रभु (वाराणसी) वाले रहे, जिनसे कर्मयुग महिमा मंडित हुआ और विकास के नये–नये क्षितिज खुले। सभ्यता विकसित हुई।

इक्ष्वाकु की ३३ वीं पीढ़ी में हुए महाराज हरिश्चन्द्र ने एक रात स्वप्न में अपना राज्य महर्षि विश्वामित्र को दे दिया। सुबह होते ही विश्वामित्र ने राज मुकुट, वस्त्रालंकार आदि लेने के बाद ऊपर से दक्षिणा मांगी। यह देने के लिए हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी तारा और पुत्र रोहित के साथ बिकने को उद्यत हुए तो महर्षि के क्रोध से डरे बिना उनकी कीमत अदा करने का साहस काशी वालों ने किया। अदा करने वालों में एक ऊंची जाति का था, दूसरा नीची जाति का । अयोध्या नरेश को खरीदने की हिम्मत काशी के नागरिकों ने जुटायी, जबकि "उस समय काशी खण्ड पर आर्यों का प्रभुत्व नहीं था। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में रचित मनु स्मृति में वैदिक सभ्यता के केन्द्र के रूप में मध्य देश का वर्णन है, काशी का नहीं।"[७]

धातुकाल, ताम्र पाषाण काल में सिन्धु घाटी की सभ्यता प्रचलित थी। कुछ विद्धानों ने उसे आर्येतर और द्रविण सभ्यता माना है। पं० जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में " हिन्दुस्तान की सबसे पुरानी कौम, जिसका हाल हमें मालूम है, द्रविण है। उसकी एक अलग जबान थी। वह दूसरी जाति वालों के साथ व्यापार आदि किया करती थी।"[८] चार हजार वर्ष ईसा पूर्व आर्यों को पश्चिमोत्तर भारत में असुरों से लड़ना पड़ा था। द्रविण दक्षिण चले गये और "असुर ईरान, सुमेरिया, असीरिया और पश्चिमी एशिया के विविध प्रदेशों में बस गये"[९] उन्हीं की १५ वीं १६वीं पीढ़ी के तरुणों ने लौटकर भारतीय शासकों से संघर्ष किया,जो देवासुर संग्राम कहलाया। सर जॉन मार्शल के अनुसार सिन्धु सभ्यता ईसा पूर्व ३२५० से १५०० ईसा पूर्व तक रही। इस कालावधि में जैन तीर्थंकर सुविधिनाथ (काकन्दी) शीतलनाथ (भदिलपुर) श्रेयांसनाथ (सिंहपुरी/सारनाथ) वासुपूज्य (चम्पापुरी) विमलनाथ, अनन्तनाथ (अयोध्या), धर्मनाथ(रत्नापुरी),शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ (हस्तिनापुर) मल्लिनाथ (मिथिला) और मुनिसुव्रत (राजगृह) हुए, जिनकी ओर से इतिहासकारों ने आंखें फेर लीं, चूंकि वे अहिंसा परायण थे। अनिवार्य हिंसा से जहां बचना संभव नहीं होता, उसकी चर्चा जैन साहित्य में १२ चक्रवर्ती ९ बलभद्र ९ वासुदेव ९ प्रतिवासुदेव के जीवन प्रसंगों में है, जिनमें कई प्रसंग काशी से जुड़े हैं, जो प्राग्वैदिक अतीत से लेकर रामायण काल के इतिहास की कड़ियां जोड़ने में सहायक हैं। महाबीर की परम्परा के साथ वीरों की चर्चा होने के बजाय वीरों की विरुदाविलयों के आगे महावीर को नजरंदाज करने से साधुता का अवमूल्यन होता है। मूल्य साधना का होना चाहिए या शासन का? शासक प्रथम स्थान पायेगा और सन्त दूसरे स्थान पर रहेंगें तो सच्चाई, सादगी, सहिष्णुता, त्याग को प्राथमिकता नहीं मिल सकती।

इक्ष्वाकु से राम तक हुए ५ अयोध्या नरेशों का विवरण महाकवि कालिदास के रघुवंश में है। इसी तरह पुराणों में भी अयोध्या की वंशावली है। " उसकी १८ वीं, १९ वीं पीढ़ी से प्राय: वैदिक मंत्रों की रचना प्रारम्भ हो गयी थी और अड़सठवीं पीढ़ी (राजा सुदास) और उनके दो तीन पीढ़ी बाद तक यह कार्य होता रहा। इसी बीच गंगा यमुना दोआब के उत्तरी भाग में स्थापित पौरव राज्य के शासक दुष्यन्त के बेटे शकुन्तलात्मज भरत ने अयोध्या को अपने राज्य में मिला लिया और दिगविजय करके अपने समकालीन राज्यों को अधीन किया"[१०] इस तरह पीढ़ियों बाद ऋषभ पुत्र भरत के नाम का भारतवर्ष शकुन्तलात्मज भरत का भारत हो गया। इसी भरत के वंश में उत्पन्न हस्ति ने हस्तिनापुर बसाया। कालान्तर में हस्तिनापुर नरेश शन्तनु के पुत्र भीष्म काशी आये और अपने भाईयों के लिए तीन राजकुमारियों– अम्बा, अम्बिका,

अम्बालिका का अपहरण कर ले गये, जिससे महाभारत युद्ध का बीजारोपण हुआ। असंतुष्ट अम्बालिका ही बाद में शिखंडी बनकर पितामह भीष्म को शरशय्या पर सुलाने का निमित्त बनी। उस युद्ध में काशीराज २८३ राजाओं और ५३ लाख १२ हजार ८४० सैनिकों (१८ अक्षौंहिणी सेना) के साथ मारे गये। पार्टीजर, सीतानाथ प्रधान, राय चौधरी आदि विद्वानों ने स्वायंभव मनु से वैवस्वत मनु तक ४५ पीढ़ियां सतयुग में हुई बतायी हैं। इसी तरह मनु से लेकर राम तक १४ पीढ़ियां त्रेता में और राम से युधिष्ठिर तक ३९ पीढ़ियां द्वापर में होना माना है। ''महाभारत संग्राम का समय ई० पू० १२७७ माना गया है।''[११] महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने इसी दौरान वेदों का अन्तिम संकलन, संपादन, वर्गीकरण किया और पुराणों का सार समझाया जिससे संभवतः : मथुरा में जन्मे नमि तीर्थंकर भी सहमत रहे।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ।।

महाभारत के तत्काल बाद वासुदेव श्री कृष्ण के देखते–देखते यदुवंशी आपस में लड़ मरे। । कुरुवंश को द्यूत लील गया और यदुवंश को मद्य। परिणाम सारे देश को भुगतना पड़ा। शौरीपुर में जन्मे अरिष्टनेमि महाराज उग्रसेन की पुत्री को व्याहने जूनागढ़ जा रहे थे कि बारातियों के स्वागत सत्कारार्थ कटने वाले पशुओं का करुण क्रन्दन सुनकर तोरण द्वार से लौट आये और उन्होनें युद्ध पीड़ित भारतीयों के घावों पर मलहम लगाने, विधवाओं के आंसू पोंछने, वृद्ध माता–पिताओं को सहारा देने, अनाथ बालक–बालिकाओं की सुध लेने का अभियान प्रारंभ कर दिया। द्वारका से काशी और काशी से द्वारका तक उनकी पदयात्रा से विचार शुद्धि, व्यवहार शुद्धि, आहार शुद्धि हुई । करोड़ों भारतीयों ने मांस त्यागा, जुआ खेलना बन्द किया, शराब न पीने की शपथ ली। स्वार्थ से परार्थ और परार्थ से परमार्थ साधने की विधाएं उजागर हुई। ''मरने पर स्वर्ग और जीतने पर राज्य''[१२] पाना अरुचिकर हो गया। गोवर्धनधारी गिरधर गोपाल कृष्ण ने व्रज को समृद्ध व शक्ति संपन्न बनाया था। उसे ध्यान में रखते हुए अरिष्टनेमि के सहायकों ने गिरनार (गुजरात) से गोमटेश्वर (कर्नाटक) के बीच व्रज खड़े किये, विख्यात हुए। यह उन प्रकृति प्रिय ब्राह्मणों को नागवार लगा,जो ''अपनी तीव्र कल्पना से नैसर्गिक शक्तिओं में देवताओं की उत्पत्ति कर उन देवताओं को समस्त ब्रह्माण्ड या उसके अंश विशेष का अधिष्ठाता समझते थे। वे इन देवताओं के निकट अन्न, पुत्र, बल, सौभाग्य आदि सम्पदाएं मांगते थे। विपद में रक्षा तथा शत्रुओं पर विजय पाने की प्रार्थना करते थे।''[१३] उनके पौरोहित्य में होने वाले नरमेध, गोमेध, अजामेध,अश्वमेध यज्ञ बंद होने लगे और यज्ञ के स्थान पर योग का प्रभाव बढ़ा। शिव की समाधि उस प्रभाव में सहायक बनी। याज्ञिक काशी से भागकर हिमालय की उपत्यका में शिव के श्वसुर प्रजापति दक्ष के यहां यज्ञ करने पहुंचे। पीछे–पीछे बिना निमंत्रण के सती पहुंची और उसने शिव की युगान्तकारी भाव–भूमि बतायी। याज्ञिक अनसुनी कर अपने मंत्र से यज्ञाग्नि प्रज्जवलित कर बैठे तो सती भी योगाग्नि प्रज्जवलित कर उसमें समा गयी। *अस कहि जोग अगनि तनु जारा।* इसके बाद भी यज्ञकर्त्ता नहीं चेते तो वीरभद्र के नेतृत्व में पहुंचे काशी के तरुणों ने वह यज्ञ ध्वस्त कर दिया। *जज्ञ विध्वंस जाइ तिन्ह कीन्हा।* यज्ञ ध्वस्त करने वाले को रामायण काल में असुर, निशाचर, राक्षस कहा जाता था,किन्तु परिस्थितियां इतनी बदलीं कि वीरभद्र आदि को शिव का गण मानना पड़ा। क्योंकि *सती जो तजी दच्छ मखदेवा। जननी जाइ हिमालय गेहा।।* वही सती बाद में पार्वती बनकर काशीवासियों की

श्रद्धापात्र बनी। संस्कृति की इस विकास यात्रा में काशी के योगदान का आकलन अभी होना है। आचार्य बिनोबा ने काल बाह्य कर्मकाण्डों की चर्चा करते हुए लिखा भी है : ''पहले जंगल बहुत थे। उस समय जंगल काटना और जलाना यज्ञ था। शिष्य जंगल से समिधा काटकर लाते और जलाते थे। जब जंगल साफ हो गया और बस्तियां बस गयीं तो माना गया कि हर मनुष्य बबूल, नीम, पीपल, जैसा कम–से–कम कोई एक वृक्ष लगाये। यह उस समय यज्ञ माना गया। हमारे देश में कपास बहुत है, लेकिन कपड़ा विदेश से आता था तो सूत कातकर कपड़ा तैयार करना यज्ञ हो गया। अब परिश्रम से अन्न उत्पन्न करना, शरीर को जलाना और उत्पादन समाज को देना यज्ञ है।''[१४] जैसे विनोबा की बात कर्मकांडियों के गले नहीं उतरती, वैसे कर्मठ आदि तापसों को नयी मान्यताएं खली, तो ईसा के ८७७ वर्ष पूर्व काशी के राजकुमार पार्श्व ने धर्माधारित सामाजिक क्रान्ति का शंख फूंका।

निष्क्रियता त्यागने वाले ब्राह्मण, शस्त्र त्यागने वाले क्षत्रिय, हिंसक व्यापार त्यागने वाले वैश्य और सेवा को धर्म मानने वाले शूद्र पार्श्व के अनुयायी होगये। *समानशीलव्यसनेषु सख्यम्* की उक्ति को ध्यान में रखकर आचार्य रत्नप्रभसूरी और स्वयंप्रभ सूरी ने उनके रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार में एकरूपता लाने के लिए ४ नियम बनाये :

१. भोग भूमि को कर्म भूमि में बदलने के लिए नित्य श्रम करना।

२. जुआ, शराब, मांस, वैश्यागमन, परस्त्री संग, शिकार और चोरी छोड़ना।

३. दान, शील, तप, भावना पूर्वक समाज विकास में सहभागिता निभाना।

४. अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, मुनि की पंच परमेष्ठी के प्रति पूज्य भाव रखना।

जिन्होनें ये नियम ग्रहण किये, वे महाजन कहलाये। महाजनों का चिन्तन व चरित्र इतना सुसंस्कृत रहा कि उपनिषदकालीन ऋषियों ने उसे अनुकरणीय माना।[१५] महाजन कर्मवीर थे और धर्मवीर भी। वे लाभ चाहते थे, पर शुभ के साथ। उन्हें ऋद्धि प्रिय थी, पर सिद्धि भी। जहां पुरुषार्थ दिखाने का अवसर आया कि वे सर्वस्व लगा देते थे। पार्श्वनाथ की धर्माधारित सामाजिक क्रान्ति से काशी की प्रतिष्ठा बढ़ी।

काशी राज्य था और वाराणसी उसकी राजधानी, तब काशी–कौशल के १८ गणराज्यों में तीर्थंकर महावीर (ई० पू० ५६९) का धर्मानुशासन था और महात्मा बुद्ध (ई० पू० ५६३) ने सारनाथ में धर्मचक्र किया। ''उस युग में काशी व्यापार का बड़ा केन्द्र थी। गंगा नदी से ही अधिक व्यापार होता था। मित्र बिन्दक नाम के व्यापारी ने जहाज से समुद्र यात्रा की। इस नगर में हाथी दांत तथा उत्तरा पथ के घोड़ों का भी खूब व्यापार होता था। काशी क्षेत्र अच्छी कपास की खेती के लिए भी प्रसिद्ध रहा। स्त्रियां खेती की रखवाली करती थीं। कशिक वस्त्र के उल्लेख से तो सारा बौद्ध साहित्य पटा है।''[१६] जैन साहित्य में ईसा पूर्व ६ठी शती के सुरादेव, चुलनी पिता और महाशतक का वर्णन है। सुरादेव के पास २४ करोड़ और चुलनी के पिता तथा महाशतक के पास ३२–३२ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं थी। उनका एक भाग खेत–मकान में, दूसरा भाग व्यापार में, तीसरा जरूरत मंदो के लिए लेन–देन में चौथा भाग समाज सेवा के लिए प्रायोजित था। सुरादेव के पास ६० हजार एवं चुलनी के पिता और महाशतक के पास ८०–८० हजार गोवंश था।

गोदुग्ध खूब होता। सैकड़ों बैल जोड़ियां खेती में लगतीं। उत्पादन से देशवासियों को तो लाभ मिला ही, काशी में भी बहुआयामी विकास हुआ। कुएं खुदे, तालाब बने, घाटों का निर्माण हुआ, मन्दिर खड़े हुए। धर्मशालाएं खुली, पाठशालाओं में साहित्य, संगीत, कला–कौशल, व्याकरण, ज्योतिष, धर्म दर्शन के अध्ययन–अध्यापन का प्रबन्ध हुआ।[१७]

राजघाट में हुई खुदाई में मिले अवशेषों से ज्ञात होता है कि यह काम तब हुआ, जब वैदिक समाज दक्षिण में अस्सी के पार, उत्तर में वरुणा के पार और पूर्व में गंगा के पार रहा। ईसा की ४थी सदी में समुद्रगुप्त द्वारा प्रयाग में सम्पन्न कराये गये यज्ञ की दक्षिणा के तौर पर ही वैदिक काशी में बसने का अधिकार पाये। फिर आर्य–अनार्य, देशी–विदेशी परम्पराओं के घुलने–मिलने से यह बनारस बना। बनारस के महाजनों ने २०वीं सदी का अन्त आते–आते भी कतलखाने जाते ६० हजार से अधिक गाय–बैलों को वाराणसी में संरक्षित, संवर्धित किया। विषाक्त रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों से मुक्त खेती शुरू की। गोबर–गोमूत्र के उपयोग से सैकड़ों एकड़ ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया। गोरस भण्डार खोले। दर्जनों गंगा घाटों की सफाई की। अनेक लोकोपकारी प्रवृतियों में तन–मन धन लगाया। उसका मूल्यांकन और सहजीवी समाजों का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए कि किससे काशी का गौरव बढ़ने से क्या योग मिल रहा है और कौन *'अन्त: शुद्धि बहि: शुद्धि: श्रम: शान्ति समर्पणम्'* को आत्मसात् किये हुए है। चीनी यात्री, अरबी विद्वान, भारतीयेतर इतिहास लेखक आदि की विविधता देखकर पिछले १६०० वर्षो में प्रभावित होते रहे हैं तो विद्रूपता देखकर नाक–भौं भी सिकोड़ गये हैं। क्यों? इसका जबाव हम सब दें और उन्नति–अवनति का आकलन कर लें, कथनी–करनी का अन्तर समझ लें। वास्तव में ''बनारस किसी बीते हुए कल की दास्तान नहीं, बल्कि एक इतिहास है। इस नगर को देखना आसान है, पहचानना मुश्किल। तंत्र साधना, मंत्र साधना, साहित्य साधना की यह विराट भूमि है। क्रमश: बदलते परिवेश के साथ–साथ यहां मन्दिरों के घड़ी–घंटालों के दशों दिशाओं में गूजतें स्वरों के साथ मस्जिदों से उठते अजान के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। गुरुद्वारों के गुम्बदों के साथ गिरजाघरों की ऊंची मीनारें भी आकाश से बातें करती दिखती हैं। यहां की शाम और रात उस समय निराली हो जाती है, जब सारा नगर अपनी सम्पूर्ण जगमगाती दिये की लौ–सी छवि के साथ गंगा की धानी चूनर ओढ़कर सो जाता है और प्रात: जागता है तो सुबहे बनारस बनकर।''[१८] अतीत की अनदेखी न कर हम सभी बनारसी आज की आवश्यकताओं और अनागत की अपेक्षाओं में संगति बिठा लें तो अब भी सारा संसार नन्दनवन, सारे वृक्ष कल्पवृक्ष, सारी नदियां गंगा, सारी प्रवृतियां पुण्यप्रदा, सारी भाषाएं हिन्दी और सारी धरा वाराणसी हो सकती है।[१९] क्योंकि हर कंकर का शंकर और *'सृकृति संभुतन विमल विभूति'* मानने वाली चेतना मनुष्य को ब्रह्म[२०] बनाती है। अहिंसा, संयम, सृजनशीलता, समाधि की समन्विति से मनुष्य देवाधिदेव बन जाता है। *'अज अनवद्य अकाम अभोगी'* महादेव की अवधारणा के मूल में धरती को स्वर्ग से श्रेष्ठ काशी को त्रिलोक से न्यारी एवं मनुष्य को देव–देवियों के लिए वंदनीय[२१] मानने वाला काशी दर्शन है।

उत्तरपाषाण काल से परमाणु काल तक की काशी यात्रा इतिहासकार लगभग हजार वर्षों में करने को आतुर हैं, लेकिन इसका सांस्कृतिक क्षितिज साठ हजार वर्षों के साथ–साथ मन्वन्तरों तक फैला है:

'जिसके सहारे तक अविद्या से मरण हम प्राप्त विद्या से अमृत करते रहें।'[२२] हेय (छोड़ने योग्य) ज्ञेय (जानने योग्य) उपादेय (आचरण करने योग्य) का विवेक कराने वाली हमारी काशी की जीवन शैली भावी विश्व व्यवस्था में प्रासंगिक रहने वाली है और अनुकरणीय भी, क्योंकि इसमें *सत्यं शिवं सुन्दरम्* की संगति है।

सचल अचल में अन्तर्यामी भिन्न पिण्ड ब्रह्मण्ड नहीं है।
काशी स्वयं प्रकाशी नगरी स्वर्ग यहीं अपवर्ग यहीं है।।

सन्दर्भ

१. भूमिष्ठापि न याऽत्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरध:स्थापि वा।
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तव:।।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी–तीरे सुरै: सेव्यते।
सा काशी त्रिपुरारि–राजनगरी पायादपायात् जगत्।। काशी खण्ड १.१।।

२. काशी खण्ड

३. काशी खण्ड

४. भ० महावीर स्मृति, खण्ड ६ पृष्ठ ३, डा० ज्योति प्रसाद जैन।

५. संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ १२९

६. प्राचीन भारत, पृष्ठ ४७–४८, डॉ० राजबली पाण्डेय।

७. वाराणसी गजेटियर, पृष्ठ २५, (१९६५)

८. पिता के पत्र पुत्री के नाम, पृष्ठ ४९.

९. प्राचीन भारत, पृष्ठ ३७–३८, डॉ० राजबली पाण्डेय।

१०. प्राचीन भारत, पृष्ठ ५७–५८, डॉ० राजबली पाण्डेय।

११. भारतीय श्रवण संस्कृति, पृष्ठ ८, जवाहिर लाल जैन।

१२. हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्–गीता २/१७.

१३. पुराण साहित्य की उत्पत्ति– डॉ० नलिनी मोहन सान्याल।

१४. विनोबा साहित्य, भाग १, पृष्ठ १२९–१४३.

१५. तर्कोऽप्रतिष्ठ: श्रुतयो विभिन्ना: नैको मुनिर्यस्य वच: प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गत: स पन्था:।। विदुर नीति।।

१६. पाटल, खण्ड २, पृष्ठ८, डॉ० अवधेश नारायण सिंह।

१७. उपासक दशांग।

१८. साहित्यकाल जो इतिहास बन गये – शिवांजलि, पृष्ठ ६७–७०, डॉ० कमल गुप्त।

१९. सम्पूर्णं जगदेवनन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पदुमा:।
गंगावारि समस्तवारिनिवहा: पुण्या समस्ता: क्रिया:।।
वाच: प्राकृतसंस्कृत–श्रुतिशिरौ वाराणसी मेदिनी।
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि।।

२०. गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न मानवात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। – महाभारत शान्ति २९९/२०.

२१. देवावि तं नमं संति जस्स धम्मे सया मनो। दशवैकालिक अ: १.१

२२. अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।– ईशावास्योपनिषद्।